# बाल-साहित्य में एक दशक का बदलाव

## प्रभात से करिश्मा बाजपेई की बातचीत

**प्रश्न :** पिछले एक दशक में किस तरह के बदलाव आप बाल साहित्य में देखते हैं?

**उत्तर :** मैं पिछले एक दशक से भी पहले से अपनी बात शुरू करना चाहूंगा। बच्चों की पत्रिका 'पराग' के निकलने तक बाल साहित्य में कुछ सजग और कुछ नया काम हो रहा था। इसकी वजह उस पत्रिका को ऐसे संपादकों का मिलना था जो हिन्दी के बड़े लेखक थे। तो रचनाओं के चयन में एक दृष्टि नजर आती थी। लेकिन वह पत्रिका नब्बे के दशक में बंद हो गई। उसके साथ ही हिन्दी में बाल साहित्य पर जो कुछ ढंग का काम हो रहा था, वह ठप हो गया। लेकिन उसी दशक में एक अच्छी बात ये हुई कि एकलव्य से चकमक पत्रिका निकलने लगी और उसने हिन्दी बाल साहित्य में पराग के जाने से जो क्षति हुई थी उसकी भरपायी का काम किया। लेकिन चकमक की पहुंच कभी भी वैसी नहीं रही जैसी पराग की थी। फिर भी उसने बाल साहित्य की मशाल को थामने का काम किया। उसी दौरान राजस्थान में बालहंस पत्रिका भी निकल रही थी। अनंत कुशवाह उसके संपादक थे। जब तक वे संपादक रहे, बालहंस में बच्चों के लिए कुछ रोचक सामग्री मिलती रही। विजयदान देथा उर्फ बिज्जी की पुनर्लिखित अमर कहानी 'आशा अमरधन' उस पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। इधर एकलव्य ने बच्चों के लिए बेहतरीन साहित्य के प्रकाशन की शुरुआत की। इसमें उन्होंने लोक कथाओं और स्थानीय भाषा में भी साहित्य प्रकाशित करने का खयाल रखा। वी सुतेयेव की किताबों के अनुवाद के लिए प्रकाशन करने के अधिकार एकलव्य ने लिए और बिल्ली के बच्चे, नाव चली, चूहे को मिली पेंसिल, रूसी और पूसी जैसी आधुनिक कहानियों का प्रकाशन किया। उन्नीस सौ चौरानवें में सत्यु का अभूतपूर्व उपन्यास 'अनारको के आठ दिन' राजकमल से आया। उन्नीस सौ अड़सठ में हिन्दी में प्रकाशित हुई बिज्जी द्वारा पुनर्लिखित लोक कथाओं की किताब 'अनोखा पेड़' के बाद, सत्यु का यह उपन्यास हिन्दी बाल साहित्य की एक बड़ी उपलब्धी है। निरंकार देव सेवक, दामोदर अग्रवाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, नवीन सागर, रमेशचन्द्र शाह आदि कवियों की बेहतरीन किताबें अपने घिसेपिटे रूप में प्रकाशित होकर हिन्दी बाल साहित्य की धरोहर बनी रहीं। हां सफदर हाशमी की कविताओं की किताबें कल्पनाशील ढंग से नए कलेवर में प्रकाशित हुईं। प्रोफेसर कृष्ण कुमार एनसीईआरटी के निदेशक बने और उनकी देखरेख में कक्षा एक से पांच की रिमझिम नाम की भाषा की पाठ्यपुस्तकें बनीं। रिमझिम में जितने रचनात्मक ढंग से बाल साहित्य के चयन और प्रस्तुतिकरण का काम हुआ वह एक ऐतिहासिक काम था। कहना चाहिए कि पाठ्यपुस्तक के स्वरूप में होकर भी रिमझिम किताबें हिन्दी बाल साहित्य का सबसे सुंदर आगार हैं। तो हिन्दी बाल साहित्य के क्षेत्र में जो उल्लेखनीय बदलाव हुआ वह इस रूप में हुआ। बाकी बाल साहित्य के नाम पर कूड़ा कर्कट में डालने योग्य पत्रिकाओं और किताबों की एक धारा जो दूसरी ओर बह रही थी वह तो बह ही रही थी। उसकी जितनी कम चर्चा की जाए उतना अच्छा है।

**प्रश्न :** पिछले एक दशक में बाल साहित्य में विषयवस्तु संबंधी बदलाव को लेकर आप क्या सोचते हैं? यथास्थिति बनी हुई है या फिर विषयों का दायरा बढा है। अगर बढ़ा है तो किस रूप में। कुछ उदाहरणों के साथ अपनी बात स्पष्ट करें?

**उत्तर :** अगर अनुवाद की राह से हिन्दी में आई किताबों को भी इसमें शामिल कर लें तो विषयवस्तु को लेकर आए बदलाव उंगलियों पर गिने जाने लायक ही नहीं रह जाएंगे। एक लम्बी फेहरिश्त हिन्दी में उपलब्ध किताबों की हमारे पास होगी। जिसमें पहाड़ जिसे चिड़िया से प्यार हुआ, क्यों क्यों लड़की, बताओं मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूं, बरास्ता तरबूज, भेड़िये को दुष्ट क्यों कहते हैं, सिर का सालन जैसी एक से एक उम्दा किताबों के नाम लिए जा सकते हैं। लेकिन खुद हिन्दी में भी विषयवस्तु को लेकर कई उत्कृष्ट रचनाएं आईं। विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यास हरी घास की छप्पर वाली झोंपड़ी और बौना पहाड़, एक चुप्पी जगह। प्रियंवद का कहानी संकलन मिट्टी की गाड़ी और उनका एक अद्भुत उपन्यास नाचघर। ये बिल्कुल नए तरह की विषय वस्तुओं के साथ हिन्दी में आए हैं। स्वयंप्रकाश की कहानियों की किताब 'प्यारे भाई राम सहाय' किशोरों के जीवन पर एक अलग ही रोचक किताब है। इसके अलावा चकमक में प्रकाशित हुई वरुण ग्रोवर की कहानियां भी ऐसी हैं कि हिन्दी बाल साहित्य में वैसी कहानियां पहले नहीं लिखी गईं। उनकी कोई भी कहानी पढ़ लीजिए वह चाहे पेपर चोर हो, चाहे रेडियो हो, चाहे हरिया विचित्तर हो। कृष्ण कुमार की 'पूड़ियों की गठरी' भी उल्लेखनीय किताब है।

कविताओं में सर्वेश्वर, नवीन सागर, सफदर हाशमी और गुलजार के बाद सुशील शुक्ल की कविताओं में आप विषयवस्तु का नयापन देख सकते हैं और जो बदलाव या नयापन होता है वह हिस्सों में या टुकड़ों में नहीं होता, वह पूर्णता में होता है। सुशील शुक्ल की कविताओं में जो नयापन आप देखेंगे तो वह ऐसा नहीं है कि केवल विषय का नयापन है। असल में उसमें कहन का भी नयापन है, भाषा का भी नयापन है। जैसे उनकी एक कविता है कि 'हरा धान का खेत हवा में चल चल कर घूमा, हर पौधे को गले लगाया हर पत्ता चूमा।' इसमें एक दृश्य अपने समूचे रस के साथ उपस्थित है। कवि द्वारा कह दिए जाने से उसमें मानवीय महसूसियत और भाषा का रस भी घुल गया है। सुशील की पापा का किचन भी एक कमाल की कविता है और चम्पा का फूल भी कि 'देर से मैं पहुंची स्कूल, एकदम चिल एकदम कूल, मास्टर जी ने गले लगाया और दिया चम्पा का फूल।' तो यहां आप देखिए कि बच्चे और शिक्षक के बीच दुर्लभ किस्म का अनुराग भरा रिश्ता भी संभव है, उसी के अनोखे सपने की ये कविता है।

गुलजार साहब के तो कहने ही क्या, वे जब भी बच्चों के लिए कुछ लिखते हैं हमेशा नया ही लिखते हैं। उनकी रचनाओं को पढ़ो तो बदलावों के लिए एक दशक जैसी सुदीर्घ अवधि के इंतजार की जरूरत ही न पड़े उनकी रचनाओं में हर बार कुछ बदल जाता है, वे समय के समानान्तर नई होती चलती हैं। उनकी रचनाओं के तो उदाहरण देने की भी जरूरत नहीं, बच्चों के लिए लिखी उनकी हर रचना अपने में एक अलग उदाहरण होती हैं। 'जंगल-जंगल बात चली है, पता चला है।' ऐसी संगीतमयी पंक्तियां उनके यहीं हमें मिलती है।

कथेतर में बात करें तो प्रियंवद की इकतारा बोले एक अच्छी किताब है। और हाल में शुरू हुई साइकिल पत्रिका में कृष्ण कुमार का यात्रा वृतांत 'संकरे बाजार में ऊंट' अगर किताब के रूप में आता है तो यह क्लैसिक रचना का दर्जा पाने वाली किताब साबित होगी।

**प्रश्न :** बाल साहित्य में भाषा को लेकर आये बदलावों के बारे में आप क्या सोचते हैं? क्या पिछले एक दशक में यह बदलाव बहुत स्पष्ट है या पहले की तरह ही भाषा का प्रयोग किया जा रहा है? कुछ उदाहरणों के साथ अपनी बात रखें।

**उत्तर :** जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं, बदलाव हिस्सों या अलग-थलगपन में नहीं आता है, वह एक संपूर्णता में आता है। पर यह समझने की बात है कि जब हम कहते हैं भाषा में बदलाव तो उसके मायने क्या हैं? असल में कई चीजों के प्रभाव आपकी भाषा को बदलते हैं। विषयवस्तु भी आपकी भाषा को बदलती है। लेखक की अपनी निजी

दृष्टि भी रचना की भाषा को बदलती है। समय भी भाषा को बदलता है। नये विमर्शों का प्रभाव भी आपकी भाषा में आता है। तो बहुत-सी बातें होती हैं जिनके कारण भाषा निरन्तर बदलती है। पर कुछ मामलों में यह बात बिल्कुल उलट भी पड़ जाती है। कहते हैं न कि जहां फरिश्ते पांव रखने से घबराते हैं वहां बेवकूफ लोग सरपट दौड़ लगाते हैं। तो साहित्य में भी कुछ काम जो चालीस साल पहले जिस तरह से हो रहे थे, ठीक उसी तरह से आज भी हो रहे हैं। कोई-कोई होते हैं, जिन्हें जगत गति नहीं व्यापती। तो बाल साहित्य में कुछ पत्रिकाओं और कुछ प्रकाशनों की किताबों को देखकर उनके यथास्थितिवाद पर, उनके जड़ीभूत सौन्दर्यबोध पर हैरत होती है।

**प्रश्न :** जब भी हम बाल साहित्य लेकर बात करते हैं तो चित्रांकन एक बहुत अहम् आयाम नज़र आता है। आपकी नज़र में क्या यह महत्वपूर्ण है? पिछले एक दशक में चित्रांकन को लेकर किस तरह के बदलाव आप महसूस करते हैं?

**उत्तर :** आप तो खुद ही कह रही हैं कि बाल साहित्य में चित्रांकन एक बहुत अहम आयाम नज़र आता है। महत्वपूर्ण आयाम है तभी आप कह रही हैं। तो यह मेरी नजर में ही नहीं सबकी नजर में महत्पवूर्ण है।

देखिए आप राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित भीष्म साहनी, सर्वेश्वर, प्रयाग शुक्ल की किताबों के इलस्ट्रेशन देखें तो आप एक बार के लिए कह सकते हैं कि उस जमाने के लिहाज से शायद वे ठीक कह भी ली जाएं लेकिन आज की तारीख में वे भरती के ही चित्र कहे जाएंगे। सीबीटी, एनबीटी की कुछ किताबों में अच्छे इलस्ट्रेशन मिलते रहे हैं लेकिन अब वहां चित्रांकन को लेकर एक गिरावट देखी जा सकती है। बावजूद इस सबके अब स्थिति बहुत कुछ बदल चुकी है। अब कई प्रकाशन बेहद उम्दा चित्रों के साथ बच्चों की किताबों को प्रस्तुत कर रहे हैं।

इलस्ट्रेटर्स की पूरी एक खेप बाल साहित्य में काम कर रही है। जगदीश जोशी (एक डेढ साल पहले नहीं रहे), शुद्धोसत्व बसु, अतनुराय, तापोशी घोषाल, केरेन हैडॉक, एलेन शॉ, दुर्गाबाई से लेकर सुविधा मिस्त्री, प्रोइती राय, प्रिया कुरियन तक कितने ही नाम आप गिन सकते हैं। और नए से नए लोगों में देखें तो हबीब, शुभम, मयूख, नीलेश, प्रशांत सोनी, हरिओम, भार्गव कुलकर्णी, वृषाली जोशी  इत्यादि कितने ही नाम हैं, इन सबके काम बाल साहित्य में जगह-जगह देखने को मिलते हैं। हिन्दी किताबों में, हिन्दी में अनुदित किताबों में और पत्रिकाओं में। चित्रांकन को लेकर ऐसा दृश्य बाल साहित्य में पहले नहीं था।

**प्रश्न :** पिछले एक दशक में मूल्य और उत्पादन संबंधी बदलावों को लेकर आप क्या सोचते हैं? यथास्थिति बनी हुई है या कुछ बदलाव आये हैं।

**उत्तर :** समझ सकता हूं कि मूल्य जब आप कह रही हैं तो जीवन मूल्य कह रही हैं। लेकिन मूल्य का एक अर्थ कीमत के संदर्भ में लिया जाता है। और उसकी भी बात करें तो कुछ हर्ज नहीं है। एनबीटी, सीबीटी की किताबों की कीमत आम आदमी की खरीद की जद में होती हैं। लेकिन तूलिका की किताबों की कीमत देखकर लेने का मन होते हुए भी वापस रख देने का मन करता है। डीजल, पेट्रोल के मूल्य सरीखे उनके मूल्य होते हैं। तो उन्हें मंहगी कार चला सकने में सक्षम वर्ग ही खरीद सकता है। वही खरीदता भी है। साइकिल स्कूटर पर चलने वाले वर्ग के लिए एकलव्य प्रकाशन एक उचित मूल्य की दुकान जैसा दिखाई देता है। यह सही है कि किताबें अच्छे कागज पर, अच्छे इलस्ट्रेशन के साथ, अच्छी साज-सज्जा में प्राप्त करनी हो तो कीमत बढ़ना लाजमी है। पर मुझे मालूम नहीं ऊंची कीमत वाली किताबें प्रकाशित करने वाले प्रकाशक अपने लेखक और चित्रकारों को भी वैसी रॉयल्टी देते हैं या नहीं।

अब आते हैं आपके जीवन मूल्यों वाली बात पर। जीवन मूल्यों के संदर्भ में बाल साहित्य में बदलाव तो आया है लेकिन वह प्रायोजित किस्म का सा बदलाव है। समावेशन या हाशिए के लोगों के प्रतिनिधित्व का खयाल अब बाल साहित्य में सोच-समझकर रखा जाने लगा है। लेकिन उसके पीछे एनजीओज की दृष्टि काम कर रही है। वह हिन्दी बाल साहित्य का स्वाभाविक हिस्सा नहीं बना है। विशेष आवश्यकता वाले बच्चे, दलित, स्त्री, आदिवासी, अल्पसंख्यक व अन्य वंचित समुदायों के प्रतिनिधित्व को सायास लाया जा रहा है। इसमें कोई बुरी बात भी नहीं है। लेकिन सवाल वही है कि

इन सबको बराबरी का प्रतिनिधित्व आखिर क्यों नहीं है। तो जो रचनाएं इन संदर्भों में आती भी हैं वे चूंकि सायास आती हैं तो उनमें एक किस्म की बनावट झलक ही जाती है। ईदगाह के जोड़ की या उसके आसपास की भी जीवन के रस से सिक्त कोई रचना क्यों नहीं मिलती है, सवाल यह है। पहाड़ जिसे चिड़िया से प्यार हुआ या बरास्ता तरबजू अनुपम रचनाएं हैं, जिनमें प्रेम का पर्यावरण है लेकिन ये रचनाएं हिन्दी की नहीं हैं, अनुवाद के जरिए आई हैं। तो सहज समाधी के लिए हिन्दी बाल साहित्य को अभी लम्बी दूरी तय करनी है।

**प्रश्न :** ऐसे कौनसे प्रकाशक हैं जो बाल साहित्य के क्षेत्र में बेहतर कर रहे हैं और वे किन अर्थों या किन रूपों में बेहतर कर रहे हैं?

**उत्तर :** प्रकाशकों के संदर्भ में मुझे प्रोफेसर कृष्ण कुमार के उदयपुर में दिए मशहूर भाषण का एक वाक्य याद आता है। उन्होंने कहा था प्रकाशन का उद्योग अगर उद्योगों में कहें तो भ्रष्टतम उद्योगों में से एक है। इस बात को थोड़ा और फैलाएं तो प्रकाशनों का भ्रष्टाचार केवल पैसे तक ही सीमित नहीं है। कौन लिखेगा, कौन चित्र बनाएगा तक भी जाता है। और जैसा कि मैंने पहले भी कहा लेखक, चित्रकार को कितना दिया जाएगा। कुछ दिया भी जाएगा या नहीं यहां तक भी जाता है। उम्दा जगहों पर कार्यशालाएं होती हैं, दूसरे शब्दों में एयर कण्डीशण्ड यात्राएं और ठहरने की व्यवस्थाएं होती हैं और बाल साहित्य देखें तो कैसा निकल कर आता है, निकृष्ट कोटि का। इन सब कारगुजारियों के चलते हिन्दी बाल साहित्य के अच्छे प्रकाशन गृह कहां से कहां पहुंच गए हैं, आप उनकी पिछले बरसों में प्रकाशित हुई किताबें देखकर जान सकते हैं। बढ़िया पैकेजिंग में बासी और नकली चीजें बेची जा रही हैं। देशी-विदेशी भाषाओं का कूड़ा कर्कट आ रहा है और हिन्दी में खपाया जा रहा है। हिन्दी में भी इतनी मात्रा में कूड़ा कर्कट उत्पादित किया जा रहा है कि इस सबको देखकर हिन्दी बाल साहित्य में कचरा प्रबंधन विभाग की सख्त जरूरत महसूस होती है। इस सब अंधेर के बीच कुछ अच्छे काम भी हो रहे हैं। जो बुरा कर रहे हैं, वे ही कुछ-कुछ अच्छा भी कर रहे हैं।

उत्पादन को लेकर दरियागंज से बाहर स्थिति काफी बदली है। दूसरी ओर जो काम सरकारों को करना चाहिए वे काम टाटा ट्रस्ट के पराग इनिशिएटिव जैसे कार्यक्रम कर रहे हैं। उनके अनुदान से एकलव्य व कुछ अन्य संस्थाओं द्वारा सुरुचिपूर्ण किताबों का प्रकाशन संभव हो पा रहा है। अगर बाल साहित्य में उत्पादन को केवल किताबों तक सीमित रखकर न देखें तो टाटा ट्रस्ट में अमृता पटवर्द्धन की परिकल्पना और पहल से दो कोर्स शुरू किए गए हैं जिनके जरिए बाल साहित्य में उल्लेखनीय काम हो रहा है। उनके द्वारा चलाया जा रहा एक कोर्स है रियाज एकेडमी। इसके तहत हर बरस बाल साहित्य के लिए चित्रकारों का एक समूह तैयार हो रहा है। दूसरा है लाइब्रेरी ऐजुकेटर्स कोर्स जिसके जरिए बच्चों के लिए पुस्तकालयों को कैसे पुनर्जीवित किया जाए और कैसे नए पुस्तकालय सृजित हों, इस दिशा में काम हो रहा है। इधर हाल ही में इकतारा संस्था के जुगनू प्रकाशन से बच्चों के सौ के आसपास कविता पोस्टरों, कविता कार्डों और कई उम्दा किताबों का कमाल का प्रकाशन हुआ है। इकतारा बाल साहित्य में हिन्दी के बड़े लेखकों को फैलोशिप दे रहा है जिससे कुछ बेहतरीन किताबें हिन्दी बाल साहित्य को मिली हैं। और हाल ही में साइकिल पत्रिका का प्रकाशन हुआ है, जिसमें हिन्दी के तमाम महत्वपूर्ण लेखकों विनोद कुमार शुक्ल, प्रियंवद, असगर वजाहत, अरुण कमल, राजेश जोशी, मंगलेश डबराल, नरेश सक्सेना, कृष्ण कुमार, उदयन वाजपेयी, कृष्ण बलदेव वैद, अनामिका को पढ़ सकते हैं। हिन्दी बाल साहित्य में ऐसा पहले तो कभी नहीं हुआ था कि हिन्दी के प्रमुख साहित्यकार बच्चों के लिए लिखने की जिम्मेदारी लें। उत्पादन को हमें इस नजरिए से भी देखना चाहिए कि अच्छे कागज और अच्छे इलेस्ट्रेशल और अच्छी साज सज्जा के साथ प्रस्तुत शब्दों में भी कुछ दम है कि नहीं। तो वह दम यहां नजर आता है। अगर ऐसा कुछ बरस चलता है तो हिन्दी बाल साहित्य का हांफना रुक जाएगा, सांस ठीक से चलने लगेगी।

**प्रश्न :** आजकल बदलाव बहुत तेज़ी से हो रहा हैं। यहां बदलाव से मेरा आशय बच्चों को लेकर समाज की सोच और बच्चों में हो रहे मानसिक बदलावों से है। जो बदलाव हम 10 सालों में महसूस करते थे वह आज 5 सालों में ही दिखाई देने लगता है, तो ऐसे में बाल साहित्य के भविष्य को आप कैसे देखते हैं?

**उत्तर :** समाज की सोच और बच्चों की सोच में बदलाव यह इतना व्यापक प्रश्न है कि जवाब के लिए सिरा कहां से पकड़ा जाए वह मुझे मुश्किल लग रहा है। समाज के एक हिस्से की सोच वही उपभोक्तावादी दौड़ में चाहे अनचाहे शामिल होने की है। समाज के एक बड़े हिस्से (किसान मजदूरों) के पास इन सब बातों के बारे में सोचने-विचारने की न तो फुर्सत है न उनके जीवन में इन आधुनिक किस्म के संस्कृति कर्मों के लिए जगह मुमकिन है। जीना एक कला भी है और जीवन को कलात्मक ढंग से जिया जाए इसके लिए कोई स्पेस कहीं नजर नहीं आता है बल्कि पारंपरिक स्पेस भी निरंतर सिकुड़ते, सिमटते और मिटते नजर आते हैं। बच्चों की सोच जाहिर है समाज से अलग नहीं होगी क्योंकि उनकी अलग सोच को विकसित होने के कोई अवसर रचे ही नहीं जाते हैं। तेजी से हुए बदलावों ने शहरी बच्चों को मोबाइल थमा दिया और ग्रामीण और शहरी निर्धन बच्चों को छिपी हुई बेरोजगारी के धूल-धूसरित चरित्रों में बदल दिया है। बेरोजगारी से त्रस्त पालकों के पास अपने और अपने बच्चों के लिए एक झुंझलायी और उकतायी हुई सोच से अधिक क्या होगा, मुझे समझ में नहीं आता है। कुछ बेरोजगार पालक बच्चों के लिए गलियों में स्कूल खोल लेते हैं, इससे उन्हें अपने बच्चों के अलावा दूसरों के बच्चों को भी पीटने का अवसर मिल जाता है। इससे अधिक क्या है। छोटे बच्चों को मुसलमानों और पाकिस्तान के विरोध में बोलते हुए आसानी से सुना जा सकता है। ऊंची जातियों के बच्चों को नीची कही जाने वाली जातियों के बच्चों से गाली-गलौंच करते हुए सुना जा सकता है। ऐसे में बाल साहित्य के भविष्य की बात छोड़िए बाल साहित्य के लिहाज से फिलहाल तो उनका वर्तमान ही कुछ नहीं है। बाल साहित्य को लेकर ऊपर जो कुछ उजली पंक्तियां आई हैं वे या तो किताबों के प्रकाशन तक सीमित हैं या कुछ एनजीओज द्वारा चलाए जा रहे शैक्षिक कार्यक्रमों की जद में आने वाले बच्चों तक सीमित है। सम्पूर्ण समाज के बच्चों के बीच बाल साहित्य की व्याप्ति अभी दूर की बात है। ◆

**प्रभात :** राजस्थान के जाने-माने युवा कवि हैं। एकलव्य, भोपाल; रूम टू रीड, इण्डिया एवं अन्य प्रकाशनों से बच्चों के लिए कविता-कहानियों की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। वर्तमान में शिक्षा के क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से कार्य कर रहे हैं।

**संपर्क :** 9460113007; prabhaaat@gmail.com

**करिश्मा बाजपेई :** मध्य प्रदेश में यूनिसेफ की कंसल्टेंट रही हैं। वर्तमान में शिक्षा में स्वतंत्र रूप से कार्यरत हैं।

**संपर्क :** 9755380877; karishmamahendru@yahoo.co.in